शिवगोपाल शाह उर्फ शिव गोपाल सहू

बनाम

सीताराम सौरगी व अन्य

30 मार्च, 2007

(अशोक भान और वीएस सिरपुरकर, जेजे)

सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 आदेश 6 नियम, 17- संशोधन आवेदन बेदखली वाद की अनुमति किरायेदार की दलील कि वह अपने पक्ष में विक्रय पत्र द्वारा मालिक बन गया। वाद में संशोधन विक्रय पत्र की फर्जी एवं अप्रभावी घोषणा करने के संबंध में दावा दस्तावेज धारण किया गया। चूंकि दावा अवधि बाधित था, इसलिए अनुमति नहीं है। बिना किसी स्पष्टीकरण के पन्द्रह साल की देरी हुई। मूल वादी और सहवादी नये स्थानांतरित व्यक्ति लापरवाही बरत रहे थे और इस तरह वादी के पास प्रमाणिकता का अभाव था।

1986 में मूल वादी ने बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया और मूल प्रतिवादी को पक्षकार बनाया। मूल प्रतिवादी ने दलील दी कि चूंकि उसने विवादित संपत्ति को संपत्ति के अन्य हिस्से के साथ विक्रय पत्र दिनांक 04.10.1985 द्वारा खरीदा था, वह विवादित संपत्ति सहित पूरे घर

का पूर्ण मालिक था। 1991 में मुकदमे को शीर्षक दावे में बदल दिया गया और वादी को आवश्यक संशोधन करना था हालांकि वादी ने मुकदमे में संशोधन नहीं किया। मूल प्रतिवादी की मृत्यु हो गयी और वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को पक्षकार बना दिया गया।

1997 में मुकदमे में लंबित रहने के दौरान मूल वादी ने मुकदमे की संपत्ति प्रतिवादी क्रमांक 3 और 4 के पक्ष में बेचान कर दिया, जिन्हें सहवादी के रूप में जोड़ा गया था। दिनांक 11.12.2004 को वादी ने आदेश 6 नियम, 17 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर कर वाद में संशोधन की मांग की। विचारण न्यायालय ने आवेदन स्वीकार कर लिया। उच्च न्यायालय ने आदेश बरकरार रखा। इसलिए वर्तमान अपील कोर्ट ने अपील स्वीकार करते हुए माना।

अभिनिर्धारितः 1. संशोधन के माध्यम से उन दावों को भी इस न्यायालय द्वारा अनुमति दी गयी है, जो अवधि बाधित थे। हालांकि इसके लिए आवेदन में एक वैध आधार होना चाहिए और सबसे पहले वादी की ओर से प्रमाणिकता और देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह भी सच है कि संशोधन मुकदमे में किसी भी चरण में पेश किया जा सकता है। हालांकि, जब उस संशोधन द्वारा एक स्पष्ट रूप से अवधि बाधित दावा पहली बार पेश किया जा रहा है, तो कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो सकती है और दूसरे वादी को अपनी नेक नियती दिखानी होगी। विशेष कर

इसलिए क्यांेकि संशोधन के माध्यम से ऐसे दावों का प्रभाव समय बीतने के साथ प्रतिवादी के अधिकारों का हनन करने का होगा।

2.1 संशोधन आवेदन को ध्यान से पढ़ने के बाद इस पर भारी देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। कम से कम देरी के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण अपेक्षित है, क्योंकि देरी बहुत बड़ी थी। संपूर्ण संशोधन आवेदन जब सावधानी पूर्वक परीक्षित किया तो कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिखता है। वादी पक्ष की ओर से यह लापरवाही उन्हें वादपत्र में संशोधन करने की अनुमति नहीं देगी। विशेष रूप से जब तब दावा स्पष्ट रूप से अवधि से बाधित हो गया हो।

2.2 प्रतिवादी ने विक्रय विलेख दिनांक 04.10.1985 के आधार पर एक विरोधी शीर्षक स्थापित किया है, वादी अपनी दलीलों में संशोधन करने के लिए बाध्य था। यदि वह उक्त विक्रय विलेख को अप्रभावी और प्रतिवादी के पक्ष में एक वैध शीर्षक बनाने में असमर्थ होने के कारण चुनौती देना चाहता था। यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि मूल वादी के मामले में 1987 से और सहवादी के मामले में 1997 के वाद से वादी लापरवाही क्यांे बरत रहा है। इसके शीर्ष पर जब संशोधन आवेदन देखा जाता है, तो यह किसी भी स्पष्टीकरण के संबंध में दुखद रूप से मौन है कि 1987 से लेकर 11.12.2004 को संशोधन आवेदन की घोषणा की मांग करने तक की लंबी अवधि के बाद ये सभी कदम क्यों नहीं उठाये गये। फर्जी और

मूल प्रतिवादी के पक्ष में कोई शीर्षक नहीं बनाया। दिनांक 04.10.1985 के विक्रय विलेख को चुनौती न देने के कारण, वादी उन परिस्थितियों के संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत नही कर सका, जिनके तहत वह विक्रय विलेख अस्तित्व में आया, यदि संशोधनों की अनुमति दी जाती, तो वे किन तथ्यों के हकदार होते। यह संपत्ति पर बेहतर स्वामित्व साबित करने के उनके प्रारंभिक कार्य से बिल्कुल अलग होगा।

2.3 इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के तहत वादी को इस स्तर पर अवधि-बाधित दावा पेश करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जहां 15 साल से अधिक की भारी देरी के अलावा वादी की ओर से लापरवाही बरती गई थी। इस प्रकार, संशोधन के लिए आवेदन खारिज किया जाता है और उच्च न्यायालय के साथ-साथ ट्रायल कोर्ट के आदेशों को रद्द किया जाता है।

डोडापति नारायण रेड्डी बनाम दुग्गिरेड्डी वेंकटनारायण रेड्डी और अन्य।

{2001} 8 एससीसी 115 और टी.एन. अलाॅय फाउड्री कंपनी लिमिटेड बनाम टी.एन. इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड और अन्य, {2004} 3 एससीसी 392, संदर्भित।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारः 2007 की सिविल अपील संख्या 1700

2005 के सीआर संख्या 1159 में पटना उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और आदेश दिनांक 23.08.2005 से।

अपीलकर्ता की ओर से भास्कर वाई कुलकर्णी।

प्रतिवादियों की ओर से एच.एल. अग्रवाल और डा॰. कैलाश चंद।

निर्णय सुनाया गया।

वी.एस सिरपुरकर, जे.

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. सीपीसी की धारा 115 के तहत पारित उच्च न्यायालय के आदेश की पुष्टि करते हुए अतिरिक्त मुंसिफ द्वारा पारित आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा संशोधनो की अनुमति दिये जाने को मजंरी दे दी है

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने दोनों निर्णयों की आलोचना करते हुए कहा कि उक्त संशोधन आवेदन के लिए उत्तरदायी था, जिसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि इसने वादी को अवधि बाधित दाव को शमिल करने की अनुमति दी थी और दूसरी बात यह कि इसमें निराशाजनक रूप से देरी की गई थी और इस तरह वादी के पास प्रामाणिकता का अभाव था।

4. कुछ तथ्य आवश्यक हैे, मूल मुकदमा वर्ष 1986 में दायर किया गया था, जिसका पंजीकरण क्रमांक बेदखली वाद संख्या 11/1986 था, जिसे सीता राम सरौगी और कुछ अन्य लोगों ने वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रतिवादी शिव गोपाल साह उर्फ शिव गोपाल साहू को पक्षकार बनाते हुए दायर किया था। वह वादी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के आधार पर बेदखली का मुकदमा था। मूल प्रतिवादी राम चरित्र साहू उपस्थित हुए और उन्होंने दलील दी कि वह किरायेदार नहीं थे और आगे कहा कि वह वास्तव में एक मालिक थे, जिन्होंने बनवारी साह और अन्य से विक्रय पत्र दिनांक 04.10.1985 द्वारा वाद संपत्ति के साथ-साथ संपत्ति का दूसरा हिस्सा भी खरीदा था। और इस तरह वह मुकदमे की संपत्ति सहित पूरे घर का पूर्ण स्वामी था।

प्रतिवादी द्वारा उठाई गई इन दलीलों के मद्देनजर, अदालत के आदेश दिनांक 16.12.1988 द्वारा मुकदमे को शीर्षक वाद में बदल दिया गया। बाद के आदेश दिनांक 04.01.1991 द्वारा मुकदमे को 1991 के शीर्षक वाद नंबर 17 के रूप में पुनः क्रमांकित किया गया और वादी को उचित संशोधन जो कोर्ट फीस का भुगतान करने के साथ-साथ आवश्यक संशोधन करने का निर्देश दिया गया। वादी मुकदमे में संशोधन करने के इस अवसर का लाभ उठाने में विफल रहा। अंततः मूल प्रतिवादी की मृत्यु हो गई और वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रतिवादी को उसके लिए पक्षकार बनाया

गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल वादी, अर्थात् सीता राम सरौगी ने मुकदमे की लंबित अवधि के दौरान मुकदमे की संपत्ति विजय कुमार यादव और मंजू देवी, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के पक्ष में वर्ष 1997 में बेच दी थी, जिन्हे उन्होने आवेदन दिनांक 22.05.2004 द्वारा सह वादी के रूप में जोड़ा गया था।

5. दिनांक 11.12.2004 को वादी ने आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के तहत एक आवेदन दायर कर वाद में संशोधन की मांग की। उस संशोधन आवेदन में कहा गया था कि प्रतिवादी द्वारा पंजीकृत विक्रय पत्र दिनांक 04.10.1985 द्वारा मालिक बनने के संबंध में उठाई गई याचिका के कारण उक्त संशोधन आवश्यक हो गए है। यह भी सुझाव दिया गया था कि अभिकथन में वादी के स्वामित्व, स्वामित्व के संबंध में दावा की जाने वाली राहत, मुकदमे में भूमि के क्षेत्र का विवरण और प्रतिवादी के पक्ष में बिक्री कार्यों से संबंधित वादी के स्पष्टीकरण शामिल थे, को संशोधनों द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा।

यह भी आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादियों के पक्ष में दिनांक 04.10.1985 की विक्रय विलेख को चुनौती देना और इसे फर्जी घोषित करना और वादी के खिलाफ बाध्यकारी नहीं होना आवश्यक था और प्रतिवादी संख्या 1 ने इस पर कोई आधिकार, शीर्षक या हित हासिल नहीं किया था। उस विक्रय विलेख द्वारा मुकदमे की संपत्ति और आगे यह

दावा करने के लिए कि वादी सीता राम सरौगी के पास मुकदमे की जमीन पर वैध शीर्षक और कब्जा था, जिसे उन्होंने विजय कुमार यादव और मंजू देवी के पक्ष में वैध रूप से स्थानांतरित कर दिया था। वादी ने उक्त संशोधन आवेदन के माध्यम से यह भी प्रार्थना की कि मूल वादी सीता राम सरौगी को एक पक्ष-प्रतिवादी के रूप में स्थानांतरित किया जाना चाहिए।

6. हालांकि, इस संशोधन आवेदन का प्रतिवादियों द्वारा विभिन्न आधारों पर कड़ा विरोध किया गया, लेकिन अनुमति दे दी गई और जैसा कि पहले कहा गया है, प्रतिवादियों द्वारा उच्च न्यायालय में सिविल पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती भी वर्तमान अपील की आवश्यकता को पूरा करने में सफल नहीं हुई।

7. याचिकाकर्ता मूल प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कुलकर्णी ने बताया कि उच्च न्यायालय ने संशोधन की अनुमति देते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करने में गलती की थी। उनका मुख्य जोर इस बात पर था कि संशोधन आवेदन दिनांक 04.10.1985 के विक्रय विलेख को फर्जी और अप्रभावी दस्तावेज घोषित करने के संबंध में एक अवधि बाधित दावा पेश करने की कोशिश कर रहा था।

विद्वान वकील के अनुसार उक्त विक्रय पत्र का तथ्य वादी पक्ष के ज्ञान में वर्ष 1987 में लाया गया था जब प्रतिवादी ने उस विक्रय पत्र के

आधार पर अपने पक्ष में स्वामित्व का अनुरोध किया था। विद्वान अधिवक्ता आगे बताते हैं कि मूल बेदखली वाद को वर्ष 1988 में शीर्षक वाद में परिवर्तित करने ओर 1991 में पुनः क्रमांकित किए जाने के बाद भी, सिविल न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 04.01.1991 में मूल वादी, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को वादपत्र में उचित संशोधन करने के लिए अनुमति दे दी थी। हालांकि, मूल वादी ने दिनांक 04.10.1985 के उक्त विक्रय पत्र को चुनौती नहीं दी, जो उनके स्वामित्व के साथ सीधे विवाद में था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि वर्ष 1987 में पुनः जब वादी ने वाद की संपत्ति विजय कुमार यादव और मंजू देवी, उत्तरदाता संख्या 3 और 4 पक्ष में हस्तांतरित की तब यहा एक सतर्क क्रेता के रूप में नए तथाकथित स्थानांतरित व्यक्ति वाद में शामिल होने के लिए बाध्य थे, जो उन्होंने 2004 तक नहीं किया था और ऐसा उनके मुकदमे में शामिल होने के बाद ही हुआ था।

सहवादी ने कहा कि उन्हें पहली बार याचिकाकर्ता प्रतिवादी के पक्ष में दिनांक 04.10.1985 के विक्रय विलेख को चुनौती देने का विचार आया। यह सब बताता है कि विक्रय विलेख को चुनौती देने का विचार आया। यह सब बताता है कि विक्रय विलेख को चुनौती, जिसके बारे में मूल वादी को 1987 में ही पता चल गया था और जिसके बारे में नए जोड़े गए वादी को नोटिस दिया जाना निश्चित था, निराशाजनक रूप से अवधि बाधित है।

विद्वान अधिवक्ता आगे कहते हैं कि वादी पक्ष में कोई भी प्रामाणिकता नहीं है क्योंकि वादी अपने अधिकारों के प्रति घोर लापरवाह बने हुए है। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय ने भी संशोधनों की अनुमति देने में गलती की है।

8. इसके विपरीत मूल वादी प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि अदालत के लिए किसी भी स्तर पर संशोधन की अनुमति देना हमेश स्वीकार्य था और भले ही यह मान लिया गया हो कि अवधि बाधित एक चुनौती बन गई है, फिर भी न्यायालय संशोधनों की अनुमति दे सकता है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के कुछ फैसलों पर भरोसा करने की कोशिश की, जिसमें कहा गया था कि इस न्यायालय के समक्ष जब-जब अवधि बाधित वाद को चुनौति पेश करने की माग की थी तब-तब न्यायालय ने संशोधनों की अनुमति दी थी।

9. यह देखा जाना चाहिए कि क्या नीचे की अदालतें वादी को संशोधन पेश करने की अनुमति देने को लेकर सही थी।

10. इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि प्रतिवादी ने वर्ष 1987 की शुरूआत में ही अपने पत्ते खोल दिये थे और मूल वादी के सामने अपने स्वामित्व का दावा किया था, जब उसने पहली बार लिखित बयान दाखिल किया था। तभी मूल बेदखली वाद को स्वामित्व वाद में परिवर्तित

कर दिया गया था। दिनांक 04.10.1985 के विक्रय विलेख को चुनौति देने का यह पहला अवसर था। जैसे कि यह पर्याप्त नही था, विचारण न्यायालय ने वादी को आवश्यक संशोधन करने की भी अनुमति दी।

हम इन सभी घटनाओं के मद्देनजर वादी पक्ष की ओर से उदासीनता को समझने में विफल है। जैसे कि यह पर्याप्त नही था जब वादी ने कथित तौर पर वर्ष 1997 में दो अलग- अलग विक्रय पत्रों द्वारा विजय कुमार यादव और मंजू देवी के पक्ष में संपति बेच दी थी, वह अपने स्वामित्व पर बदलाव की सूचना खरीदारों को दे सकते थे या कम से कम खरीदार मूल वादी के स्वामित्व पर संदेह का घ्यान रखने के लिए बाध्य थे। क्रेता, अर्थात, प्रतिवादी संख्या क्रमशः 3 और 4 2004 तक निश्चित रहे। हम नही जानते कि मूल वादी ने सात साल की लंबी अवधि तक मुकदमें को कैसे जीवित रखा।

बात साल 2004 की ही है हस्तांतरितियों ने खुद को सहवादी के रूप में जोड़ने की मांग की, जो कि वर्ष 1997 में दो अलग-अलग विक्रय विलेखों द्वारा उक्त संपत्ति खरीदने के तुरंत बाद किया जाना चाहिए था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि मूल वादी और बाद के खरीदार भी 15 वर्षों से अधिक की अवधि तक आत्मसंतुष्ट और लापरवाह बने रहे। और पहली बार 04.10.1985 के विक्रय विलेख को चुनौती देने के लिए उठे और घोषणा की कि यह फर्जी है और मूल प्रतिवादी के पक्ष में कोई शीर्षक नहीं बनाया

है।

11. संशोधन आवेदन का ध्यान से अध्ययन करने के बाद हमें इस भारी देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं मिला। हम कम से कम देरी के संबंध में कुछ स्पष्टीकरण की उम्मीद करते है क्योंकि हस्तगत प्रकरण मे देरी बहुत बड़ी थी। संपूर्ण संशोधन आवेदन का जब सावधानीपूर्वक अध्ययन किया तो इस पर देरी का कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिखता है। वादी पक्ष की ओर से यह लापरवाही और आत्मसतुष्ठि उन्हें वादपत्र में संशोधन करने की अनुमति नहीं देती, विशेष रूप से तब जब दावा, स्पष्ट अवधि बाधित हो गया हो।

12. यह बिल्कुल सत्य है कि इस न्यायालय ने कई निर्णयों में, उन दावों को भी संशोधन के माध्यम से अनुमति दी है जो अवधि से बाधित थे। हालंकि, इसके लिए आवेदन में एक वैध आधार होना चाहिए ओर सबसे पहले वादी की ओर से प्रामाणिकता और देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह भी सच है कि संशोधन मुकदमे के किसी भी चरण में पेश किया जा सकता है, हालांकि, जब उस संशोधन द्वारा पहली बार एक स्पष्ट रूप से अवधि बाधित दावा पेश किया जा रहा है, तो उसमे कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता होगी और दूसरी बात, वादी को अपनी नेकनीयती दिखाने के लिए, विशेष रूप से इसलिए कि संशोधन के माध्यम से ऐसे दावों का प्रभाव समय बीतने के साथ प्रतिवादी में बनाए गए

अधिकारों को प्रभावित करने का होगा। जब हम वर्तमान तथ्यों को देखते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि वादी पक्ष द्वारा विशेषकर संशोधन आवेदन में कहीं भी ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया है।

13. डोंडापति नारायण रेड्डी बनाम दुग्गीरेड्डी वेकटनारायण रेड्डी और अन्य, {2001} 8 एससीसी 115 में इस अदालत ने कहाः

> "आम तौर पर, संशोधन की अनुमति तब तक दी जानी चाहिए जब तक कि यह न दिखाया जाए कि संशोधन की अनुमति देना अन्यायपूर्ण होगा और इसके परिणामस्वरूप विपरीत पक्ष के खिलाफ पूर्वाग्रह पैदा होगा, जिसकी भरपाई लागतों से नहीं की जा सकती है या उसे उस अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा तो उसे समय की चूक के साथ मिला है।"

14. टी.एन. में एलाॅय फाउंड्री कंपनी लिमिटेड बनाम टी.एन. इलेक्ट्रिक बोर्ड और अन्य, {2004} 3 एससीसी 392 इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली पीठ एलजे पर निर्भर है। लीच एंड कंपनी लिमिटेड इनाम जार्डाइन स्किनर एंड कंपनी, एआईआर (1957) एमसी 357 को निम्नानुसार दोहराया गयाः

> 'वाद में संशोधन की अनुमति देने के संबंध में कानून अच्छी तरह से तय है। एल.जे.लीच एंड कंपनी लिमिटेड बनाम जार्डिन

स्किनर एंड कंपनी में यह माना गया था कि यदि कोई नया मुकदमा दायर किया जाता है, तो अदालत एक नियम के रूप में संशोधन की अनुमति देने से इनकार कर देगी। संशोधित दावे पर आवेदन की तारीख की सीमा लागू नहीं होगी। लेकिन यह एक कारक है जिसे विवेक का प्रयोग करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या संशोधन किया जाना चाहिए और न्यायालय के आदेश देने शक्ति को प्रभावित नहीं करे।'

इस अपील में स्थिति अलग नहीं है और जैसा कि उपर वर्णित है, मुकदमा स्पष्ट रूप से सीमा सें वर्जित होगा।

15. प्रतिवादी ने 04.10.1985 के विक्रय विलेख के आधार पर एक विरोधी शीर्षक स्थापित किया है, वादी अपनी दलीलों में संशोधन करने के लिए बाध्य था यदि वह उक्त विक्रय विलेख को अप्रभावी और प्रतिवादी के पक्ष में एक वैध शीर्षक बनाने में असमर्थ होने को चुनोती देना चाहता था। यह हमें पूरी तरह से परेशान करता है कि मूल वादी के मामले में 1987 से और सहवादी के मामले में 1997 के बाद से वादी लापरवाही क्यों बरत रहा है। इसके शीर्ष पर जब हम संशोधन आवेदन देखते है, तो यह किसी भी स्पष्टीकरण के संबंध में दुखद रूप से मौन है कि 1987 से 11.12.2004 को संशोधन आवेदन किए जाने तक लंबी अवधि के बाद ये सभी कदम क्यों नहीं उठाए गए। 04.10.1985 के विक्रय विलेख को

चुनौति ना देने के कारण वादी उन परिस्थितियो के सबंध मे साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका जिसके तहत वह विक्रय विलेख अस्तित्व में आया, यदि संशोधनों की अनुमति दी जाती तो वे किन तथ्यों के हकदार होते। यह संपत्ति पर बेहतर स्वामित्व साबित करने के उनके प्रारंभिक कार्य से बिल्कुल अलग होगा।

16. इन परिस्थितियों में हम वादी को इस चरण में इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन अवधि बाधित दावा पेश करने की अनुमति नहीं देगे, जहां हमें वादी की ओर से अवधि की भारी देरी के अलावा 15 वर्ष की लापरवाही का पता चलता है। इसलिए, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय के साथ-साथ विचारण न्यायालय के आदेशों को रद्द करते हैं और संशोधन के लिए आवेदन दिनांक 11.12.2004 को खारिज करते हैं।

17. लागत के संबध मे कोई आदेश नही होगा।

अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सरिता स्वामी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।